भारत को विश्वगुरू बनाने के लिये शिक्षकों को समाज में सम्मानजनक स्थान देना होगा।

शिक्षक–दिवस को सिर्फ औपचारिकता न समझें।

– हरिवंश चतुर्वेदी
डायरेक्टर, बिमटेक

जब डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन 1962 में देश के दूसरे राष्ट्रपति बने तो उन्होनें खुद यह सुझाव दिया कि उन का जन्मदिवस देश के शिक्षक दिवस के रूप में मनाया जाये। हर साल 5 सिंतबर को देश के लाखों स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में शिक्षक–दिवस बड़ी धूम–धाम से मनाया जाता है। किन्तु जरा यह भी सोचिये कि क्या हम डा. राधाकृष्णन की कल्पना के अनुरूप शिक्षकों और उनके पेशे को वर्षों बाद भी वह सम्मान दे पाये है, जो कि उन्हें दिया जाना चाहिये था?

क्या जब कभी हम अपने किसी पुराने शिक्षक से मिलते हैं, तो क्या उन से मिलकर वैसा ही महसूस करते है जैसा कि किसी नेता, अभिनेता, डाक्टर, इंजीनियर, उद्योगपति या किसी साधु–संत से मिलने पर अनुभव करते हैं? क्या आज शिक्षक के पेशे से युवा लोग उतने ही आकर्षित होते हैं जितना कि सीए, एमबीए, आईएएस और आईपीएस की नौकरियों से होते हैं?

भारतीय अर्थव्यवस्था अभी हाल ही में सकल राष्ट्रीय उत्पादन के आधार पर दुनिया में चौथें नंबर पर पहुंच गई है। अगले कुछ वर्षों में हम इस के तीसरे स्थान पर भी पहुंचने के लिये उम्मीद रखते हैं। किन्तु क्या शिक्षा व्यवस्था में बड़े गुणात्मक परिवर्तनों और सुधारों के बिना यह संभव होगा? चौथी औद्योगिक क्रांति हमारे दरवाजे खटखटा रही है, किन्तु हमारी मौजूदा शिक्षा प्रणाली अभी भी 18वीं सदी में हुई प्रथम औद्योगिक क्रांति से पैदा हुए रोजगार के ढांचे के अनुरूप संचालित हो रही है।

पिछले एक दशक में टैक्नोलॉजी के क्षेत्र में ऐसे युगान्तरकारी परिवर्तन आये हैं कि विश्वस्तर पर उद्योगों, व्यवसायों, बाजारों, समाज, शिक्षा, मीडिया और राजनीति में सब कुछ उलट–पलट रहा है। यह 'सब कुछ' इतनी तेजी से घटित हो रहा है कि कभी–कभी हमें ऐसा लगता है कि हम 1984 जैसा कोई वैज्ञानिक उपन्यास पढ़ रहे हैं या कोई हॉलीवुड की एवेंजर जैसी फिल्म देख रहे हैं। सूचना क्रांति ने दुनिया को बदलने में एक बड़ी भूमिका निभाई थी, किन्तु चौथी औद्योगिक क्रांति ऐसे बड़े बड़े परिवर्तनों को ला रही है, जिनकी कोई कल्पना नहीं कर सकता।

आज शिक्षक दिवस मनाते समय हमें गहराई से यह सोचना है कि क्या हमारे स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय इस चौथी औद्योगिक क्रांति के बारे में सजग और जागरूक हैं या अभी भी अलसायी नींद में सोये हुए पुराने ढर्रे पर चल रहे हैं? क्या हमारे राजनेता, नीति–निर्माता, शिक्षक और विद्यार्थी इस कटु सत्य से वाकिफ है कि वर्ष 2030 तक अधिकांश मौजूदा रोजगार खत्म हो जायेंगे और जो नये रोजगार पैदा होंगे उनकी तैयारी के लिये आवश्यक शिक्षा, पाठ्यक्रम, उपकरण, शिक्षक और पढ़ाने के तौर–तरीके अभी हमारे पास उपलब्ध नहीं हैं।

दरअसल आज विश्व स्तर पर चौथी औद्योगिक क्रांति के अनुरूप 'शिक्षा 4.0' की बहुत चर्चा हो रही है जिसे मोटे तौर पर चौथी शैक्षणिक क्रांति का नाम दिया जा सकता है। वर्ष 2030 तक पहुंचते–पहुंचते दुनिया में शिक्षकों का पेशा खत्म नहीं होने जा रहा है किन्तु एक बात तय है कि शिक्षक की महत्ता और भूमिका में बड़े बदलाव आयेंगे। शायद अगले दशक में शिक्षकों को डाक्टरों, वैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों, प्रशासनिक अधिकारियों, अभिनेताओं और राजनेताओं के बराबर महत्व और सम्मान मिल पायेगा। सबसे बड़ा बदलाव होगा कि शिक्षा का काम सिर्फ व्याख्यान देकर ज्ञान बांटना न हो कर, युवा–पीढ़ी को एक कोच, मेंटर या मित्र के रूप में भविष्य का रास्ता दिखाने का भी होगा।

शिक्षक–दिवस को एक उत्सवधर्मी औपचारिकता न समझतें हुए आज यह सोचने की जरूरत है कि शिक्षक होने के क्या मायने और सरोकार होते है? शिक्षक–दिवस पर हमें आज यह आत्म–विश्लेषण करना होगा कि 20वीं सदीं में जिस भारतीय समाज में सर आशुतोष मुकर्जी, डा. एस राधाकृष्णन, प्रो. वीएस झा, प्रो. केएन राज, प्रो. पीसी महलनोबिस, डा. रामास्वामी मुदालियर, डा. वीकेआरवी राव और प्रो. डीटी. लकडावाला जैसे शिक्षकों की पूजा होती थी, परन्तु आज हमारी युवा पीढ़ी क्रिकेट, फिल्म और टी.वी. के कलाकारो, एथलीटों और उद्यमियों को ही अपना आदर्श क्यों समझनें लगी है।

शिक्षकों के बारे में समाज की धारणा पिछले 75 वर्षों में कैसे बदल गयी, यह हमारे साहित्य और फिल्मों में शिक्षक पात्रों के चरित्र–चित्रण में भी देखा जा सकता है। 20वीं सदी के लेखकों यथा प्रेमचन्द, शरत चंद्र, बंकिम चन्द्र, रवीन्द्र नाथ टैगोर आदि ने अपनी रचनाओं में शिक्षकों को बहुत सकारात्मक रूप में चित्रित किया था। भारतीय फिल्में भी आजादी से पहले के रूप में दिखाती रही। फिल्म गंगा–जमुना में जब अभिनेता अभि भट्टाचार्य को ''इंसाफ की डगर पे, बच्चों दिखाओं चल के'' गाना स्कूली बच्चों के साथ गाता हुआ दिखाया गया तो भारतीय युवाओं को एक बहुत मूल्यवान संदेश मिला।

पिछले दशकों की फिल्मों में शिक्षकों को एक हास्यास्पद चरित्र के रूप में प्रदर्शित किया गया है। इन फिल्मों में शिक्षक की भूमिका हंसी पैदा करने के लिये है क्योंकि वे एक सनकी, जिद्दी और तानाशाह के रूप मे कहानी में प्रवेश करते हैं और विद्यार्थी–वर्ग की मानसिकता से बिल्कुल कटे हुए हैं। बॉलीवुड की फिल्मों 'थ्री इडियटस' और मुन्ना भाई एम.बी.बी.एस., में प्रिंसिपल को निश्चित रूप से एक नकारात्मक चरित्र के रूप में पेश किया गया था।

आजादी के बाद भारतीय समाज ज्ञान, विज्ञान, समानता, चरित्र निर्माण, सामाजिक सद्भाव और सामाजिक सरोकार जैसे मूल्यों के प्रति अपनी निष्ठा लगातार खोता

गया है। इसके विपरीत भ्रष्टाचार, धनलिप्सा, स्वार्थपरिता, चालाकी और अवसरवादिता जैसे नकारात्मक मूल्य हमारे समाज पर हावी होते चले गये। इस दौर में शिक्षकों की पेशागत प्रतिबद्धताओं और योग्यताओं में भी लगातार क्षरण होते देखा गया। आजादी के बाद के प्रारंभिक दशकों में शिक्षकों की कार्यदशाएं और वेतन–भत्ते अन्य पेशों की तुलना में कम थे। नतीजतन पूरे देश में प्राथमिक, स्कूली एवं कालेज–यूनिवर्सिटी शिक्षकों की यूनियनों ने शिक्षकों को लामबन्द करके लगातार आन्दोलन किये। शिक्षक संघों के आंदोलनों से जहां उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार आया वहीं दूसरी ओर उन्हें शिक्षा के उन्नयन से लगातार विमुख होते भी देखा गया। क्या स्कूल, कालेज तथा यूनिवर्सिटियों के शिक्षकों से जुड़े हुए राष्ट्रीय व प्रादेशिक संघ, शिक्षकों की शौक्षणिक सुधारों के प्रति इस उदासीनता के लिये उत्तरदायी नहीं?

पिछलें 3 दशकों में चौथे वेतन आयोग से लेकर सातवें वेतन आयोग तक की सिफारिशों के लागू होने के फलस्वरूप सरकारी कर्मचारियों की तरह शिक्षकों के वेतनमानों में लगातार वृद्धि होती गई। मिसाल के तौर पर 1977 में डिग्री कालेज के लैक्चरर को करीब एक हजार रू मासिक वेतन मिलता था, जो सातवें वेतन आयोग की सिफारिशें लागू होने के बाद लगभग रू. 60,000 तक पहुंच गया है यानी कि 45 वर्षो में 60 गुना। भारतीय समाज में शिक्षकों की प्रतिष्ठा में गिरावट का कारण शिक्षकों के आर्थिक स्तर में सुधार के साथ–साथ उनकी पेशागत प्रतिबद्धता में कमी होना भी है। देश के कई राज्यों में बहुत से डिग्री कालेजों एवं विश्वविद्यालय परिसरों में 100 दिन भी पढ़ाई नहीं होती है।

यह भी सच है कि सभी शिक्षक अपनी जिम्मेदारी से नहीं भागते है। शिक्षकों के एक बड़े वर्ग की दिलचस्पी पढ़ाने–लिखाने में रहती है। हमारे देश में उच्चशिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की तादाद आजकर 3.80 करोड़ बताई जाती है। इन विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिय जरूरी समुचित संसाधनों की कमी लगातार देखी

गई है। उच्चशिक्षा संस्थानों में कक्षाऐं, प्रयोगशालाएं, लायब्रेरी, होस्टल, स्पोर्ट्स आदि की सुविधाएं पर्याप्त और अच्छी क्वालिटी की नहीं हैं।

देश के किसी भी कालेज या यूनिवर्सिटी कैम्पस में अगर आप जायें, तो युवा विद्यार्थियों का अक्सर हूजूम दिखाई देगा। आम तौर पर इसका कारण कक्षाएं न लगना होता है। लेकिन इस भीड़–भाड़ का एक मुख्य कारण युवा आबादी में हो रही बेतहाशा वृद्धि के साथ–साथ उच्चशिक्षा का समुचित विस्तार न होना है। कल्पना करिये कि वर्ष 2030 तक उच्चशिक्षा में विद्यार्थियों की संख्या जब मौजूदा 3.8 करोड़ से बढ़कर 8 करोड़ हो जायेग, तो कैसा परिदृश्य होगा? विश्व के अन्य विकसित व विकासशील देशों की तुलना तें हमाररे पास पर्याप्त मात्रा में नहीं हैं। मानव संसाधन मंत्रालय की रिपोर्ट (2018) के अनुसार इस समय देश में करीब 15 लाख शिक्षक कालेजों और विश्वविद्यालयों में कार्यरत हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार राज्य विश्वविद्यालयों में 40 प्रतिशत तथा केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में 35 प्रतिशत शिक्षकों की जगहें खाली पड़ी हुई है।

भारतीय समाज और सरकार को शिक्षकों की भूमिका का नये सिरे से मूल्यांकन करना होगा। शिक्षकों को भी आत्मालोचना करने की बडी जरूरत है। उन्हें नयी शिक्षण पद्धतियों, सूचना प्रौद्योगिकी, चौथी औद्योगिक क्रांति एवं 21वीं सदी के शिक्षाशास्त्र से प्रशिक्षित और सुसज्जित करने की जरूरत है। यह कार्य कितना कठिन है इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 7वें अखिल भारतीय स्कूल शिक्षा सर्वेक्षण के अनुसार सन् 2002 में हमारे स्कूलो में 55.30 लाख शिक्षक कार्यरत थे। इनकी कुल संख्या अब करीब 97 लाख होनी चाहिये। इसमें अगर 15 लाख कालेज व विश्वविद्यालय शिक्षकों को संख्या को जोड दिया जाये, तो देश में शिक्षकों की कुल संख्या 1.12 करोड़ हो जायेगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में कहा गया है कि शिक्षक हमारे बच्चों का भविष्य बनाते हैं, इसलिये वे हमारे राष्ट्र के निर्माता हैं। शिक्षकों को उच्चस्तरीय सम्मान और

जीवन स्तर फिर से दिया जाना चाहिये जिससे कि सर्वश्रेष्ठ युवा प्रतिभाओं को शिक्षक बनने के लिये प्रेरित किया जा सके। क्या हम भारतीय समाज में उनको एक सम्मान जनक स्थान देने की स्थिति में हैं और क्या 21वीं सदी के ज्ञानोन्मुख समाज के लिये हम उन्हें नये सिरे से प्रशिक्षित और प्रेरित कर पायेंगे?